P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-2) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

कबीर के दार्शनिक चिंतन में शांकर अद्वैत वेदांतिक दृष्टि

सारांश

कबीर स्वभाव से संत थे। उनकी मूल चेतना आध्यात्मिक थी। उनकी इसी आध्यात्मिक चेतना ने उनके दार्शनिक चिंतन को आकार और आधार दिया। शंकराचार्य भी भारतीय दार्शनिक परम्परा के उच्च कोटि के दार्शनिक और विचारक थे। दोनों शिखर पुरुषों का कालखण्ड अलग–अलग भले ही रहा हो, परन्तु दोनों की दार्शनिक चेतना अद्वैतवाद की ओर जाती है। कबीर और शंकर के ब्रह्म, जीव, जगत और माया सम्बन्धी विचारों में यह तथ्य स्पष्ट रुप से परिलक्षित होता है।

मुख्य शब्द : दार्शनिक चेतना, अद्वैतवाद, शांकरवेदान्त, शंकर, शंकराचार्य, कबीर, ब्रह्म, जीव, जगत, माया।

त्रिपुरेश कुमार त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर
दर्शनशास्त्र विभाग
नेशनल पी0जी0 कॉलेज,
बड़हलगंज, गोरखपुर,
उत्तर प्रदेश, उत्तर प्रदेश,
भारत

प्रस्तावना

कबीर का दर्शन स्वानुभूतिमूलक है। यद्यपि उनकी दार्शनिक चेतना के विषय में विद्वानों के नाना मत हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार उन पर बौद्धदर्शन के क्षणिकवाद के साथ नाथ पंथ योगियों की साधना का प्रभाव है तो वहीं कुछ विद्वानों का मत है कि उन पर विशिष्टाद्वैत की भक्तिधारा का भी प्रभाव है। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि कबीर के तत्व चिंतन में सूफियों का प्रेम भी मुखर है। पर अधिकांश विद्वानों का मत है कि कबीर पर अद्वैतवाद का सर्वाधिक प्रभाव है। वस्तुतः कबीर का दर्शन भारतीय साधना पद्धतियों और विचारों का तर्कसंगत विकास है।

शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन भी वैदिक–औपनिषदिक ज्ञान परम्परा का तर्कसंगत चरम विकास है। शंकराचार्य ने भी प्रचलित विभिन्न मतों को प्रतिपक्ष में रखकर उनकी तार्किक आलोचना और व्याख्या कर अपने अद्वैतवाद को विकसित किया।

शोधपत्र का उद्देश्य

वस्तुतः कबीर सत्याग्रही थे। जहॉ कहीं भी उन्हें सत्य तत्व की उपलब्धि हुई, बेझिझक उन्होनें उसे आत्मसात किया। यही कारण है कि उनकी दार्शनिक विचारधारा में अनेक मतों, संतों, सम्प्रदायों तथा उनकी साधना पद्धतियों का मिश्रित प्रभाव है। इस शोधपत्र का उद्देश्य यह दिखाना है कि विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित होते हुए भी कबीर अद्वैतवाद के सर्वाधिक निकट हैं और उससे प्रभावित हैं।

कबीर का दार्शनिक चिंतन एवं शांकर अद्वैत वेदान्तिक दृष्टि

कबीर ने अपने दार्शनिक चिंतन के अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि पर विस्तार से विचार व्यक्त किये हैं। हम देखेंगें कि उनके दार्शनिक चिंतन पर थोड़े बहुत अपवादों को छोड़कर शांकर अद्वैत वेदान्त का प्रभाव सर्वाधिक परिलक्षित होता है।

ब्रह्म

कबीर का दर्शन ऊपर से जितना उलझा हुआ दीखता है, भीतर से उतना ही सुलझा हुआ है। कबीर ब्रह्म से शुरु होकर जीव तक जाते हैं और जीव से शुरु होकर ब्रह्म तक आते हैं। इस प्रकार उनके काव्य में ब्रह्म, जीव व जगत के बीच पारस्परिक दौड़ बहुत अधिक है। वस्तुतः दर्शन के इतिहास में सत्ता (तत्व) की खोज दो बिन्दुओं से शुरु की जाती है–या तो विषयी (मनुष्य) के विवेचन से या तो विषय (वस्तु) के विवेचन से। अद्वैत वेदांत और कबीर दोनों की विशेषता यह है कि इसमें एक ही साथ दोनों पद्धतियों को अपनाया गया है–तत् और त्वम् दोनों का एक साथ विश्लेषण चलता है और निष्कर्ष भूत तत्व/सत्य अद्वैत है।[1]

कबीर का ब्रह्म अरुपात्मक है। सत्, रज और तम गुण रुप निर्मित करते हैं। ब्रह्म इन गुणों से परे होने के कारण ही अरुपात्मक है। जिसे किसी

विशेषण से विशेषित नहीं किया जा सकता, वही निर्गुण और निर्विशेष है, कबीर का ब्रह्म इसीलिए और इसी अर्थ में निर्गुण है।

उपनिषदों ने इस ब्रह्म का यशोगान करते हुए 'नेति–नेति'[2] कहा है। वेद का ब्रह्म निषेधात्मक है। कबीर का ब्रह्म निर्गुण, अलख, अरुप होकर भी निषेधात्मक नही है, क्योंकि निर्गुण में ही गुण है और गुण में ही निर्गुण है। परस्परावलम्बन के कारण ब्रह्म की सत्ता इस रुपात्मक जगत से पृथक नहीं है। इसलिए वह निर्गुण होकर भी इस सृष्टि के कण–कण में समाया हुआ है–

नाति सरुप बरण नही जाकै,
घटि घटि रह्यौ समायी[3]

शंकर भी जगत को ब्रह्म से अनन्य मानते है[4] अर्थात् शांकरवेदांत में भी जगत की सत्ता ब्रह्म से पृथक् नहीं है।

शंकर के अनुसार ब्रह्म मन, बुद्धि, वाणी से परे होने के कारण अनिवर्चनीय है, तो कबीर का ब्रह्म भी अरुप होने के कारण अनिर्वचनीय है–

जाकै मुँह माथा नहीं, नहीं रुपक–रुप।
पुहुप बास थै पातला, ऐसा तत अनूप।।[5]

कबीर ब्रह्म को निर्गुण मानते हुए भी उसे जगत का आधार मानते हैं। शंकर भी ब्रह्म को जगत का कारण मानते हैं–जन्माद्यस्य यतः।[6]

शंकर का ब्रह्म सच्चिदानन्द है। इसी को श्रुति में ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म''[7] कहा गया है। कबीर भी ब्रह्म के आनन्द को इस भौतिक जगत के समस्त आनन्दों से श्रेष्ठ और वरेण्य मानते हैं।

इन दोनों के बीच साम्यता के अलावा वैषम्य भी है। कबीर का ब्रह्म अद्वैत होकर भी प्रेम और भक्ति का अविषय नहीं है। वह दया, माया से रहित नहीं है। जीव उससे पिता–पुत्र, पति–पत्नी, मालिक–नौकर का सम्बन्ध जोड़ सकता है।

मैं बौरि मेरे राम भरतार।
ता कारनि मैं रचि–रचि करौं सिंगार।।

वह कीरी से कुंजर में समाया हुआ है। वही प्रेम का दुख देता है और हरता भी है। ब्रह्म के प्रेम में कबीर ऐसे डूबते है जिसमें वह रोम–रोम सारा का सारा अंग सराबोर हो जाता है–

बरस्या बादल प्रेम का, भीज गया सब अंग।[8]

जहॉ तक शंकर के ब्रह्म का सवाल है, तो वह निर्गुण ब्रह्म प्रेम या भक्ति का विषय नहीं है। शंकर यह मानते हैं कि प्रेम और भक्ति की अवधारणा द्वैत पर आधारित है और द्वैत मायाजनित है।

जीव

कबीर ने ब्रह्म को ही जीव और जीव को ही ब्रह्म कहा है। शंकर भी यही कहते हैं– ''जीवो ब्रह्मैव नापरः''। कबीर के अनुसार माया से वशीभूत होकर ही ईश्वर/ ब्रह्म जीव हो जाता है और माया से मुक्त होकर यही जीव ईश्वर हो जाता है। शंकराचार्य भी कहते हैं कि जीव अनादि अविद्या के कारण ब्रह्म से भिन्न अपने अस्तित्व का अनुभव करता है। जब अविद्या निवृत्ति होकर आत्मज्ञान होता है तब उसे ब्रह्म से अपनी अनन्यता का ज्ञान हो जाता है। कबीर नें ब्रह्म और जीव के बीच के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए 'बिम्ब–प्रतिबिम्ब' का दृष्टान्त दिया है। वे दर्पण या जल का दृष्टांत देते हुए समझाते है कि जल या दर्पण में जो दिख रहा है और जो देख रहा है– वह एक ही है। अंतर है तो– सिर्फ बिम्ब–प्रतिबिम्ब का। एक मूल है तो दूसरी छाया। ब्रह्म तो एक ही है लेकिन माया के कारण वह अनेक रुपों में दिखाई पड़ता है। जल यदि स्थिर तो उसमें एक ही चांद प्रतिबिम्बित होगा, लेकिन जल को आन्दोलित कर देने पर उसी जल में असंख्य चांद प्रतिबिम्बित होने लगते हैं। उसी प्रकार ब्रह्म एक ही है लेकिन माया से आंदोलित मन में वह विभिन्न रुपों में दिखाई देता है। ब्रह्म बिम्ब है, जीव प्रतिबिम्ब है।

शंकर के दर्शन में भी ब्रह्म–जीव के सम्बन्ध में आभासवाद, अवच्छेवाद आदि सिद्धांतों के साथ प्रतिबिम्बवाद का भी उल्लेख है।[9] जिसमें ब्रह्म को बिम्ब और जीव को प्रतिबिम्ब माना गया है। ब्रह्म का प्रतिबिम्ब होने के कारण जीव ब्रह्म से अभिन्न है। शंकर के दर्शन में भी जल और चंद्रमा का उदाहरण/उपमा दी गयी है।

जगत

कबीर के अनुसार यह जगत ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है। वह उस अकेले ब्रह्म का ही फैलाव है। वही इस जगत में अनेकों रुप में दिखाई पड़ता है।

एक राम देख्या सबहिन मैं, कहै कबीर मन माना।[10]
माटी एक भेष धरी नाना, सब मैं ब्रह्म समाना।।[11]

शंकर की दृष्टि में जगत की स्वतंत्र एवं निरपेक्ष सत्ता नहीं है। जगत अपनी सत्ता के लिए पूर्णतया ब्रह्म पर आश्रित है। मायायुक्त ब्रह्म या ईश्वर इस जगत का कारण है। माया के कारण ही निर्गुण एवं भेदरहित ब्रह्म प्रपंचात्मक जगत के रुप में आभासित होता है।

कबीर अपने दर्शन में जगत के मिथ्यात्व की बात करते हैं–

''यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े धुल जाना है''[12]

शंकर भी अपने दर्शन में जगत के मिथ्यात्व की बात करते है–

ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवौ ब्रह्मैव नापरः[13]

जगत मिथ्या इसलिए है कि ब्रह्म ज्ञान से जगत की तात्विकता का खण्डन होता है।

माया

कबीर का माया सम्बन्धी दृष्टिकोण या तो अद्वैत वेदान्त के अनुरुप है या फिर लौकिक या व्यावहारिक। व्यावहारिक या लौकिक दृष्टि से इसे ठगिनी, पापिनी, विलाड़िन, कामिनी, कंचन आदि कहा है। काम, क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष आदि को भी माया का रुप माना है। दार्शनिक दृष्टि से कबीर माया को सत्, रज, तम का ही सम्मिलित रुप मानते हैं। माया इन तीन गुणों की सहायता से ही इस रुपात्मक जगत को रचती है और हर जीव को रुपतृष्णा का शिकार बनाती है।

''माया महाठगिनी हम जानी
तिरगुण फांस लिए कर डोले
बोले मधुरी बानी''[14]

शंकर के दर्शन में भी माया की आवधारणा आधारभूत महत्व रखती है। शंकर के अनुसार परमार्थतः ब्रह्म की ही एकमात्र सत्ता है। उससे इतर कोई भी सत्ता नही हैं। पर अनुभव में जगत का प्रपंच एवं जीवों की विविधता आती है। ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता के साथ जगत–जीव–प्रपंच का सामंजस्य कैसे स्थापित किया जाय? अद्वैत वेदान्त इस गुत्थी को सुलझाने के लिए माया की अवधारणा प्रस्तुत करता है। उनके अनुसार माया/अविद्या के कारण निर्गुण, निर्विशेष एवं भेदरहित ब्रह्म के स्थान पर प्रपंचात्मक जगत एवं जीवों की विविधता का अनुभव होता है। माया/अविद्या त्रिगुणात्मक है और वह ब्रह्म की स्वाभाविक शक्ति है जिससे वह इस नाम–रुपमय प्रपंचात्मक जगत को उत्पन्न करता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कबीर और शंकर के दर्शनों में यह साम्यता अनायास नहीं है। वस्तुतः दर्शन में अद्वैतवाद तार्किकता और बौद्धिकता का अनिवार्य परिणाम है। शंकराचार्य और कबीर दोनों के दर्शनों में हम तार्किकता और बौद्धिकता की प्रधानता पाते हैं। इसीलिए दोनों का दार्शनिक निष्कर्ष एक ही है–अद्वैतवाद।

दरअसल भारत में जन्में हर कवि, दार्शनिक, साहित्यकार, वैज्ञानिक, विचारक आदि की सोच में जो एकरुपता दिखती है, उसके पीछे एक कारण यह भी है कि ये सभी भारत की सनातन वैदिक एवं औपनिषदिक परम्परा से प्रभावित रहे हैं। सभी की एक सांझा सांस्कृतिक विरासत रही है, उसी से वे पल्लवित, पोषित एवं पुष्पित होते रहे। विविधता से भरे इस देश में भले ही सतही स्तर पर वैचारिक विभिन्नता दिखती हो, पर गहरे स्तर पर एक आपसी वैचारिक सहमति भी है।

अन्त टिप्पणी

1. *उद्धृत सक्सेना एवं मिश्रा, अस्तित्ववाद के प्रमुख विचारक, मध्य प्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 2002, पृ. 134*
2. *अर्थात् आदेशों नेति–नेति, बृह. उप. 2/3/6*
3. *कबीर ग्रंथावली, श्री श्यामसुंदर दास–सम्पादित, काशी नागरी–प्रचारणी सभा, काशी, 1928, पद–180*
4. *अतश्च कृत्स्नस्य जगतो ब्रह्मकार्यत्वात् तदनन्यत्वात्। ब्रह्मसूत्र भाष्य, 2/1/20*
5. *कबीर ग्रंथावली, पद–584*
6. *जन्माद्यस्य यतः, ब्रह्मसूत्र–1/1/2*
7. *तैत्तिरीय उपनिषद 2/1*
8. *हजारी प्रसाद द्विवेदी–कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994 पृ. 255, पद–191*
9. *उद्धृत, राममूर्ति पाठक, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रुपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009*
10. *कबीर ग्रंथावली, पद–52*
11. *कबीर ग्रंथावली, पद–255*
12. *कबीर बीजक (कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति हरक, बाराबंकी द्वारा प्रकाशित) पृ. 112*
13. *उद्धृत, चंद्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन–आलोचना और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रण 2013, पृ0 239*
14. *कबीर वाणी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पद–134*